© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

व्याकरणदर्शन के प्रत्यक्षमीमांसा में मौनिश्रीकृष्णभट्ट मत का अन्वाख्यान

गोविन्द शुक्ल
शोधछात्र
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान,
भोपाल परिसर, भोपाल (मध्यप्रदेश)

विविध दर्शनों में प्रमाणों में भेद है जैसे–चार्वाक दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण ही है, वैशेषिक एवं बौद्ध दर्शन प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण को स्वीकृति देते है। कुछ वैशेषिक दार्शनिक आगन को स्वतन्त्र प्रमाण मानते है। संख्याचार्य प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द के भेद से तीन प्रमाण स्वीकार करते है ईश्वर कृष्ण ने सांख्य कारिका में तीन प्रमाणों का उल्लेख किया हैं–

'दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाण सिद्धत्वात्।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं, प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि'।।[1]

योग दर्शन भी ही प्रत्यक्ष अनुमान और आगम तीन प्रमाण ही स्वीकार करता है[2]

उपमान प्रमाण के साथ चार प्रमाण न्याय शास्त्र को मान्य है– प्रत्यक्षाऽनुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि[3]

अर्थापत्ति के साथ पञ्च प्रमाण प्रभाकर को एवम् उनके अनुयायो मांमासकों को स्वीकार है,अनुपलब्धि के साथ छः प्रमाण का विवेचन कुमारिल भट्ट एवं वेदान्तियों ने किया है।प्रत्यक्ष और परोक्ष भेद से दो प्रमाण एवं परोक्ष का भेद स्मृतिप्रत्यभिज्ञानोहानुमानागम ये पञ्च भेद जैनाचार्यों के अभिप्रेत है।

व्याकरणदर्शन में आचार्य पाणिनि ने प्रारम्भ में दो प्रकार के प्रमाणों की चर्चा की जिसमें प्रथम प्रमाण के रूप प्रत्यक्ष को स्वीकार करते हुए 'अपरोक्षे च' इस सूत्र का उपस्थापन किया, अपरोक्ष का अर्थ जो परोक्ष न हो अर्थात् जिसका ज्ञान इन्द्रिय जन्य हो उसी को प्रत्यक्ष भी कहते हैं।

दूसरा 'परोक्षे च' इस सूत्र से परोक्ष को दूसरे प्रमाण के रूप में स्वीकार किया इस परोक्ष प्रमाण के अन्तर्गत अनुमान,शब्द और अर्थापत्ति इन तीन प्रमाणों का समावेश होता है। इसके अतिरिक्त भर्तृहरि ने अभ्यास अदृष्ट और प्रतिभा को पृथक् प्रमाण माना है। आचार्य भर्तृहरि ने अभ्यास प्रमाण का विवेचन करते है कि मणि, रजत इत्यादि का जो ज्ञान है उसका वास्तविक ज्ञान प्रत्यक्ष अनुमान से गम्य नहीं है वह अभ्यास के द्वारा ही ज्ञात होता है अतः अभ्यास को पृथक् प्रमाण स्वीकार करना चाहिए–

परेषामसमाख्येयमभ्यासादेव जायते।
मणिरूप्यादिविज्ञानं तद्विदां नानुमानिकम्।।[4]

भाष्यकार ने प्रमाण के लक्षण 'प्रमाकरण' में प्रमा का लक्षण अनिर्ज्ञातार्थस्य साकल्येन ज्ञानम्[5] ऐसा स्वीकार किया है। इसमें प्रमाण 'मानं हि नाम तद् येनानिर्ज्ञातमर्थं ज्ञस्यामि, उप समीपे यन्नात्यन्ताय मिमीते तदुपमानम्'[6] यह भाष्य है। इसका व्याख्यान में कैयट ने प्रदीप में करते हुए लिखा– यथा प्रस्थादि। ते हि

साकल्येन मेयं परिच्छिद्यते[7] इति। नागेन ने प्रदीप में लिखा– अनिर्ज्ञातार्थस्य साकल्येन ज्ञापकत्वम् । इसका अर्थ यह है कि अनिर्ज्ञात अर्थ का साकल्येन ज्ञान ही प्रमा है। उक्त, लक्षण में साकल्येन का अर्थ अबाधितार्थ विषय ज्ञान अर्थात् जिस ज्ञान का उत्तरकाल में प्रमाणान्तर से बाध न हो ऐसा ज्ञान ही प्रमा है। संसय विपर्यादि में सामान्य ज्ञान का प्रमाणान्तर से जायमान ज्ञान का विशेषज्ञान से बाध हो जाता है। जैसे– सुक्ति में जो रजस की प्रतीति होती है वह चाकचिक्यादि के कारण जन्य है यह ज्ञान साधारण ज्ञान है इस ज्ञान में सुक्तित्त्वात् विशेष धर्म की उपस्थिति नहीं होती।

जैसे 'अयं घटः' इस ज्ञान में प्रत्यक्ष प्रमा के द्वारा इदत्त्वेन जो घट का ज्ञान है वह सामान्य ज्ञान है एवं घटत्वे घट का ज्ञान विशेष होता है। जहाँ पर केवल 'घटः' इत्याकारक ज्ञान होता है वहाँ पर घटत्वेन घट ज्ञान सामान्य ज्ञान है और आकृति का ज्ञान विशेषज्ञान है। अनुमिति स्थल में भी पर्वतो वह्निमान् इस अनुमिति में वह्नित्वेन और पर्वतीयत्वेन जो वह्नि का ज्ञान है वह सामान्य ज्ञान है एवं पर्वत सम्बन्ध रूप में जो पर्वतीय वह्नि का ज्ञान है वह विशेष ज्ञान है। उपमिति प्रमा स्थल में गो सदृश गवय का जो ज्ञान होता है वह सामान्य ज्ञान है क्योंकि गो में विद्यमान सकल धर्म गवय में विद्यमान नहीं होते वहाँ पर तो किञ्चित् धर्म के सादृश्य के कारण गो से गवय का ज्ञान होता है अतः उपमिति स्थल में साकल्येन ज्ञान के न होने के कारण उपमिति को प्रमा नहीं स्वीकार किया इसलिए भाष्यमत में उपमान प्रमाण नहीं है।

यहाँ विचार करते हैं कि ज्ञान की सत्ता तो त्रिक्षणात्मिका है प्रथम क्षण में ज्ञान उत्पन्न होता द्वितीय क्षण में रहता है एवं तृतीय क्षण में नष्ट हो जाता है पुनः द्वितीय ज्ञान उत्पन्न होता है इस प्रकार धारावाहिक्रम से ज्ञान की सत्ता तावत् बनी रहती है जब तक प्रत्यक्ष स्थल में इन्द्रिय एवं अर्थ का संयोग रहता है। परन्तु प्रकृत लक्षण को स्वीकार करने पर प्रथम क्षण में जो ज्ञान उत्पन्न होगा वही प्रमा कहलायेगा तदनन्तर द्वितीयादि क्षण में जायमान ज्ञान प्रमा नहीं कहलायेगें क्योंकि प्रथम क्षण में ज्ञात ज्ञान का ही ज्ञान द्वितीय क्षण में होगा तो वह ज्ञान अर्निज्ञात न हो कर ज्ञात विषय ही होगा। इसका समाधान यह है कि तेजरूप चक्षुरिन्द्रिय के प्रतिक्षण भिन्न–भिन्न के उत्पादक होने के कारण तद्विशिष्ट ज्ञान के भी भिन्न–भिन्न होने के कारण प्रामाण्य का निर्वाह हो जायेगा।

आचार्य मौनिश्रीकृष्णभट्ट ने व्याकरणों के मत में दो प्रमाण ही स्वीकार किये हैं–

'प्रत्यक्षं शब्दश्चेति द्वयमिति शाब्दिकाः[7]

आचार्य मौनिश्रीकृष्णभट्ट ने प्रत्यक्ष प्रमाण में ही अनुमान प्रमाण की गतार्थता को स्वीकार किया है।[8]

सभी प्रमाणों में प्रत्यक्ष प्रमाण का प्राथम्य है अतः उस पर विचार करते है। प्रत्यक्ष प्रमाण के लक्षण के विषय में लघुमञ्जूषा में नागेश भट्ट ने विचार किया है जो इस प्रकार है–**इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्या या बुद्धिवृत्तिः (चित्तवृत्तिः) सा, तत्प्रतिबिम्बितं चैतन्यं वा प्रत्यक्षप्रमा, तत्करणं प्रत्यक्षं प्रमाणम्**[9] यह शब्दशास्त्रज्ञों को अभिमत है। करती है–**अपक्रामति तत्तस्माद्दर्शनमिति**[9]वाम्यपदीयकार भर्तृहरि भी प्राप्यकारित्व को स्वीकार करते हैं–

चक्षुषः प्राप्यकारित्वे तेजसा तु द्वथोरपि

विषयैन्द्रिययोरिष्टः संस्कारः स क्रमो ध्वनेः[10]

इस लक्षण कें मताऽनुसार इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमा का करण है द्वितीय मत के अनुसार वृत्ति प्रमा का करण है इस प्रकार इन्द्रिय अथवा वृत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण है।

चित्त का द्रव्यात्मक वृत्यात्मक परिणाम होता है जैसे– तलाब में विद्यमान जल छन्द्रि से निकल कर नाली के माध्यम में खेत में जाकर तदाकाराकारित हो जाता है उसी प्रकार अन्तःकरण में स्थित चित्त भी चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा घटादिविषय देश में जाकर घटादिविषय के साथ संयुक्त होकर तदाकाराकारित हो कर सूक्ष्मावस्था रूप विषय वासाना के कारण तद्तद् विषय के आकार में परिणत हो जाता है, उसके इसी परिमाण

को वृत्ति कहा जाता है। यह परिणाम अन्तः विघटित होता है क्योंकि बौद्धार्थघटादि के विषय में भी प्रत्यक्षप्रमा की उत्पत्ति स्वीकार की जाती है। बाह्य वस्तु की सत्ता होने पर बाह्य विषय के साथ इन्द्रिय संयोग बाह्य विषय के साथ तादाम्य युक्त होकर बाह्यविषयाकार परिमाण में कारण होता है। स्वप्नादि स्थल में बाह्मविषय के अभाव में तद्तदाकार परिमाण की प्रतीति होती है इसीलिए स्वप्नादि में तद्तद् बौद्धार्थविषयों का प्रत्यक्ष होता है। इस प्रकार चक्षुरिन्द्रिय विषयदेश में जाकर विषय के साथ संयुक्त होकर विषय को प्रकाशित करती है। माहाभाष्यकार पतञ्जलि ने मन संयुक्त इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमा स्वीकार किया है– मनसा युक्तानीन्द्रियाण्युपलब्धौ कारणानि भवन्ति।[11]

नैयायिकों के मत में प्रत्यक्ष के दो भेद निर्विकल्पक एवं सविकल्पक है इनके मत में इन्द्रियार्थ सन्नकर्ष से निर्विकल्पक ज्ञान की उत्पत्ति होती है तदनन्तर सविकल्पक ज्ञान उत्पन्न होता है इस प्रकार निर्विकल्पक ज्ञान के प्रति चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण है इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष व्यापार है द्वितीय अवस्था में सविकल्पक ज्ञान उत्पन्न होता है। परन्तु महाभाष्यकार निर्विकल्पन ज्ञान को नहीं स्वीकार करते क्योंकि निर्विकल्पक ज्ञान स्थल में वस्तु का साकल्येन ज्ञान नहीं होता केवल यह कुछ है इस प्रकार का ही ज्ञान होता है अतः विशेषज्ञान के न होने के कारण निर्विकल्पक प्रत्यक्ष को नहीं स्वीकार किया।

शाब्दिकों के मत में सामान्य विशेष भेद से प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है, चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा रूप के प्रत्यक्ष होने पर घ्राण, रसन त्वग् इत्यादि इन्द्रिया भी सहकारिकारण के रूप में प्रवृत्त होती है, जब रूप का विशेषतः प्रत्यक्ष होता है एवं गन्ध आदि का उसी स्थल में सामान्य रूप में प्रत्यक्ष होता है। इसी प्रकार घ्राण इन्द्रिय से जब गन्ध का विशेष रूप से प्रत्यक्ष होता उसी समय स्पर्शादि का सामान्यरूप से।

शब्दार्थतर्कामृतम् में प्रत्यक्ष प्रमाण– आचार्य मौनिश्रीकृष्ण भट्ट ने प्रत्यक्ष का लक्षण किया– **प्रत्यक्षप्रमायाः करणं प्रत्यक्षम्**[12]

प्रत्यक्ष प्रमा का जो करण है वही प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस लक्षण में प्रत्यक्ष पद का निर्देश क्यों किया प्रमाकरणं प्रत्यक्षम् इतना ही लक्षण करते। अनुमानादि प्रमाण में अतिव्याप्ति न हो जाए उसके करण के लिए प्रत्यक्षपद आवश्यक है[13] वह प्रत्यक्ष प्रमा इन्द्रिय जन्य यथार्थ ज्ञान रूप है[14] यहाँ पर शङ्का करते हैं कि ईश्वर का तो इन्द्रिय के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होता तो ईश्वर के प्रत्यक्ष में लक्षण की अव्याप्ति होगी, तो इसका समाधान करते है कि 'इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नम्' इस सूत्र में ईश्वर प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्ष्य नहीं है।[15]

यह प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है नित्य प्रत्यक्ष अनित्य प्रत्यक्ष, भगवत् प्रत्यक्ष नित्य प्रत्यक्ष है।[16] नित्यत्व का लक्षण है–

प्रागभावाऽप्रतियोगित्वे सति ध्वसाप्रतियोगित्वम्'[17] प्राक् अभाव का अप्रतियोगी होते हुए जो ध्वंस का अप्रतियोगी हो उसे नित्य कहते है, उत्पति के पूर्व कारण में कार्य का अभाव प्रागभाव कहलाता है[18] उत्पन्न हुए कार्य का अपने कारण में अभाव प्रध्वसाभाव कहलाता है[19] इसका तात्पर्य यह है कि जिसकी न तो उत्पत्ति हो न ही नाश हो उसे नित्य कहते है।

भगवत् प्रत्यक्ष से भिन्न पदार्थों का जो प्रत्यक्ष होता है वह अनित्य प्रत्यक्ष है। वह अनित्य प्रत्यक्ष भी दो प्रकार का है निर्विकल्पक सविकल्पक[20] वह निर्विकल्पक ज्ञान वैशिष्ट्य में रहने वाली सांसर्गिकविषयता से रहित या प्रकारता सामान्य से रहित अथवा विशेष्यता सामान्य से रहित है। शाब्दिक निर्विकल्पक ज्ञान का प्रमाणाभाव के कारण नहीं स्वीकार करते और इसे स्वीकार करने का कोई फल भी नहीं है, और निर्विकल्पक ज्ञान की कल्पना करना गौरव है क्योंकि इसका अनुभव भी नहीं होता।[21]

इस प्रकार प्रायः प्रत्यक्ष के विषय में मौनिश्रीकृष्ण भट्ट महाभाष्य का अनुकरण करते है।

सन्दर्भ

1. सांख्यतत्त्व कौमुदी, श्लोक, 4
2. योगसूत्र, सूत्र–7
3. न्यायसूत्र, कपिल, सूत्र सं–1ध्1ध्3
4. वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, कारिका– 35
5. व्याकरणदर्शने प्रमाणसमीक्षा, पृ. सं.–2
6. वै. म. भा. पृ.– 126
7. शब्दार्थतर्कामृतम् 2 पृ. 4
8. अत्र यथोपनीभानेन अनुमानस्य गतार्थता, शब्दार्थतर्कामृतम्, पृ. 4
9. म. भाष्य. 2/3/28
10. वाक्यपदीयम् , ब्रह्मकाण्ड–80
11. महाभाष्य– 3/2/115
12. शब्दार्थतर्कामृतम् दृ 4.1, पृ. 7
13. अनुमानादावतिव्याप्तिवारणाय प्रत्यक्षेति शब्दार्थतर्कामृतम्, 4.1, पृ. 7
14. सा चेन्द्रियजन्यं यर्थार्थज्ञानम्, शब्दार्थतर्कामृतम्, पृ. सं.– 7
15. इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नम् इति सूत्रे ईश्वरप्रत्यक्षस्य अलक्ष्यत्वात् शब्दार्थतर्कामृतम् , पृ. 7
16. तच्च प्रत्यक्षं द्विविधं नित्यमनित्यं च। नित्यं भागवतम् । शब्दार्थतर्कामृतम्– पृ. संख्या–12
17. शब्दार्थतर्कामृतम्, 4.6, पृ.12
18. उत्पत्तेः प्राक् कारणे कार्यस्याभावः प्रागभावः, तर्कभाषा, पृ. 523
19. उत्पन्नस्य कारणेऽभावः प्रध्वंसाभावः, तर्कभाषा, पृ. 523
20. तच्चानित्यं द्विविधं निर्विकल्पकं सविकल्पकं चेति। शब्दार्थतर्कामृतम्, 4.8, पृ. 12
21. तत्र निर्विकल्पकं वैशिष्ट्यनिष्ठसांसर्गिकविषयताशून्यं प्रकारतासामान्यशून्यं विशेष्यतासामान्यशून्यं वा, श. तर्का0– 4.7, पृ. 12 सन्दर्भग्रन्थसूची

1. व्याकरणदर्शनभूमिका, रामाज्ञा पाण्डे, सम्पूर्णानन्दसंस्कृत–विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वितीयसंस्करण, 1981
2. व्याकरणदर्शनपीठिका, रामाज्ञा पाण्डेय, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी, द्वितीयसंस्करण, 1986
3. अष्टाध्यायी पाणिनि, सं0, श्री गोपालदत्तपाण्डेय, चौखम्भा सुरभारतीप्रकाशन, वाराणसी, 2009
4. तर्कभाषा केशव मिश्र, सं. डॉ. गजाननशास्त्री मुसलगाँवकर, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009
5. तर्कसङ्ग्रहः अन्नभट्ट, तर्कदीपिका, किरणावली न्यायबोधिनी पदकृत्यसमेतः, सं. वामाचरणभट्टाचार्य वाणीविलासप्रकाशन वाराणसी 1989
6. व्यासभाष्यम् , वात्स्यायन, सं. श्री नारायण मिश्र, काशी संस्कृतग्रन्थमाला, 43, वाराणसी, 1970
7. प्रदीप (महाभाष्य) नागेशभट्ट, व्याकरण महाभाष्यम् सं. नन्दकिशोरशास्त्री, वाराणसी, 1938 पुनर्मुद्रण, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 1999
8. वाक्यपदीयम् ब्रह्मकाण्डम् भर्तृहरि, हरिवृषभकृत स्वोपज्ञवृत्ति एवं पद्मश्रीपण्डित रघुनाथशर्माकृत अम्बाकत्रीव्याख्या सहित, सरस्वतीभवनग्रन्थमाला, 91, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी सं. तृतीय 1980
9. वाक्पदीयम् पदकाण्डम् भर्तृहरि जातिद्रव्यसम्बन्धसमुद्देशत्रयात्मक हेलाराजविरचित प्रकाश व्याख्या एवं पद्मश्रीकपण्डितरघुनाथ शर्मा कृत अम्बकत्रीव्याख्या सहित, सरस्वतीभवनग्रन्थमाला, 91, स. सं. . वि. वाराणसी 1980

10. वाक्यपदीयम्,पदकाण्डम्,द्वितीयभाग भूयोद्रव्यगुणदिक्साधनक्रियाकालपुरुषसंख्या उपग्रहलिङ्गंसमुद्देशात्मक हेलाराजविरचित प्रकाश व्याख्या एवं पं. पद्मश्रीपण्डितरघुनाथशर्मा कृत अम्बाकत्री व्याख्या सहित, सरस्वतीभवनग्रन्थमाला 91, स. सं. वि. वि. वाराणसी, 1991
11. वाम्यपदीयम् पदकाण्डम् , वृत्तिसमुद्देश हेलाराजविरचित प्रकाश एवं श्रीरघुनाथ शर्माकृत अम्बाकत्री व्याख्या सहित, स. सं. वि. वि. वाराणसी 1977
12. सांख्यतत्वकौमुदी पण्डित वंशीधरमिश्र विरचित सांख्यतत्त्वविभाकर, श्रीरामशास्त्री, के द्वारा संशोधित, चौखम्बा संस्कृत सिरीज वाराणसी 1921
13. पातञ्जलयोगदर्शनम् , व्यासभाष्य सहित एवं योगदीपिका व्याख्या, डॉ. देवीसहाय पाण्डेय चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2013
14. व्याकरणमहाभाष्य, महामहोपाध्याय श्रीनागोजिभट्टविरचित महाभाष्यप्रदीपोद्योतोद्भासितेन महामहोपाध्याय श्रीकैयटोपाध्यायविरचितेन प्रदीपेन विराजितम्, श्रीगुरुप्रसादशास्त्री, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
15. वैशेषिकदर्शन, पं. राजाराम (प्रोफेसर डी.ए.वी. कालेज, लाहौर), बाम्बे मशीन प्रेस लाहौर, मे. पं. हर भगवान् मैनेजर के प्रबन्ध से छपवाया, सन् 1919 ई.।
16. पाणिनीयव्याकरणे प्रमाणसमीक्षा, आचार्य श्रीरामप्रसाद त्रिपाठी, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी।
17. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, विश्वनाथपञ्चाननभट्टाचार्य पं. ढुण्ढिराजशास्त्रिसम्पादिता, विद्याविलासप्रेस, वाराणसी, 1925
18. योगसूत्र, व्यासभाष्य नारायण मिश्र सम्पादित, भारतीय विद्याप्रकाशन, वाराणसी, 1971
19. शब्दार्थतर्कामृतम्, मौनिश्रीकृष्णभट्टविरचित, सं. ललितकुमारत्रिपाठी, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान, गङ्गानाथझापरिसर, प्रयाग
20. पाणिनीयव्याकरणशास्त्रे वैशेषिक तत्त्वमीमांसा, डॉ. रामशरण शास्त्री, वैद्य भीमसेन शास्त्री, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली।
21. व्याकरणस्य दर्शनत्वम्, डॉ. महेन्द्र शुक्ल, MPASVO] M- Publication
22. शब्दार्थतर्कामृतम् में आलोचित न्यायवैशेषिक दर्शन की पदार्थमीमांसा : एक अनुशीलन Journal of The Ganganath Jha Kendriya Sanskrit Vidyapeetha] Allahabad - 2010

———0———